जन्म 1879 – मृत्यु 1955

आइंस्टाइन विज्ञान से शांतिवाद तक

सुबीर सरकार

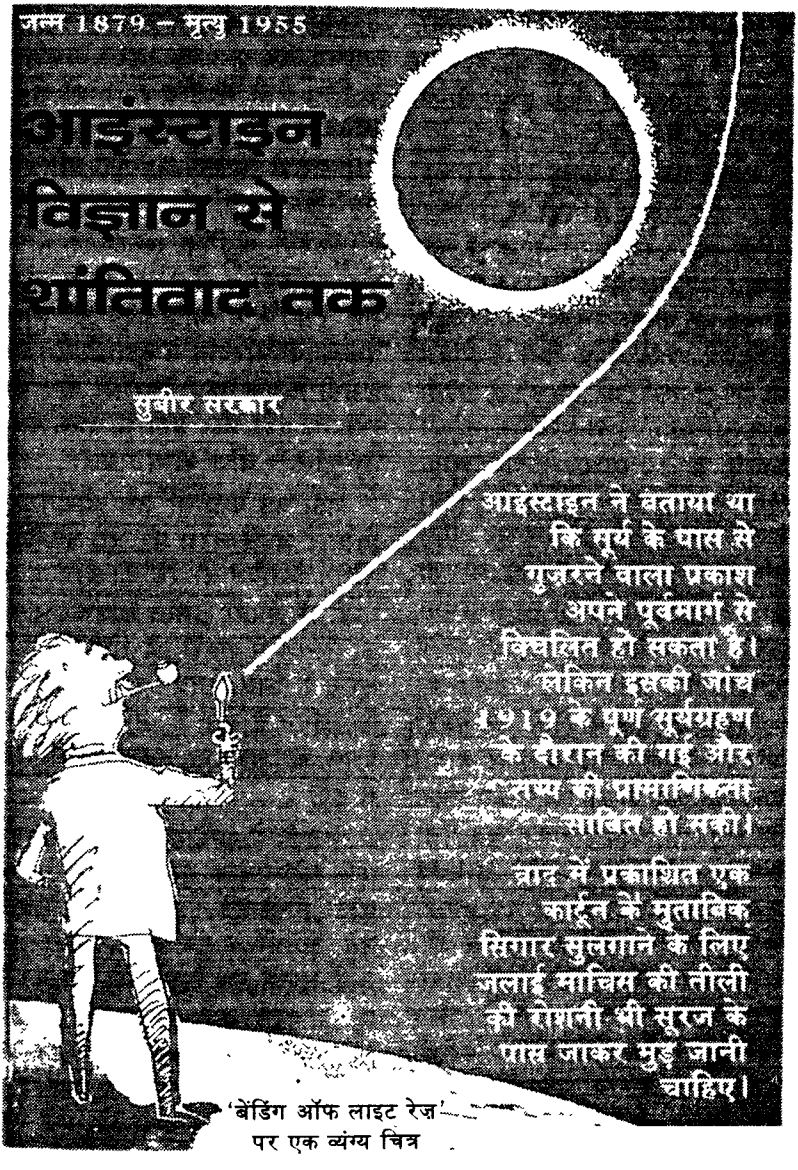

'बेंडिंग ऑफ लाइट रेज़' पर एक व्यंग्य चित्र

जिन दिनों आइंस्टाइन जर्मनी में बड़े हो रहे थे, वे दिन यूरोपीय इतिहास में काफी उथल-पुथल वाले दिन थे।

उनके जन्म से कुछ पूर्व, सन् 1871 में, मज़दूरों और सैनिकों ने मिलकर पेरिस की सरकार को अपदस्थ कर कम्यून की स्थापना की थी। सत्ता पर उनका यह कब्ज़ा लगभग तीन महीने बरकरार रहा। जर्मन सेना ने पेरिस की इस जनक्रांति को कुचलने में अपनी सहायता प्रदान की। परिणाम-स्वरूप कम्यून के 30,000 से भी ज़्यादा सदस्यों को फांसी पर लटका दिया गया। और जर्मनी के चांसलर ऑटो वॉन बिस्मार्क ने यह दंभपूर्ण घोषणा की "वर्तमान समस्याओं का समाधान बहुमत और लोकसंकल्प से नहीं, बल्कि खून से किया जाएगा"।

इसके दो वर्ष बाद ही एक गहरा और विश्वव्यापी आर्थिक संकट आया। एक ओर जहां चंद लोगों ने इस संकट का अनुचित लाभ उठाकर खूब पैसा कमाया, वहीं दूसरी ओर सामान्य जनता का जीना दूभर हो गया। चारों ओर असंतोष की लहर व्याप्त थी। श्रमिकवर्ग आंदोलन पर उतर आया। इस आंदोलन को दबाने के लिए बिस्मार्क ने कई समाजवाद विरोधी कानून बनाए। जर्मनी एक सैन्य प्रधान देश बनता जा रहा था। सन् 1870 से 1890 के बीच उसका शस्त्र-व्यय लगभग तीन गुना बढ़ा। हरेक नागरिक के लिए सेना में तीन साल की सेवा अनिवार्य कर दी गई। हर तरह के समाजवादी साहित्य पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया गया।

गहराते आर्थिक संकट का सारा दोष यहूदियों के मत्थे मढ़ दिया गया। सन् 1879 में आइंस्टाइन का जन्म एक यहूदी परिवार में हुआ। उसी वर्ष जर्मनी में एक यहूदी विरोधी लीग की स्थापना हुई। और यहीं से नात्सीवाद का कुत्सित बीज बोया गया।

यही वह वक्त था जब औद्योगिक विस्तार अपने चरम पर था। बड़े-बड़े उद्योग स्थापित हो रहे थे। लोग-बाग गांवों में अपनी ज़मीन छोड़कर काम की तलाश में शहरों की ओर पलायन करने के लिए मजबूर थे। और जैसा कि लेनिन ने कहा है, सन् 1880 के दशक की शुरुआत एकछत्र पूंजीवाद से हुई।

उन दिनों आइंस्टाइन के पिता, जो एक इलेक्ट्रिकल इंजीनियर थे, एक छोटी-सी फैक्ट्री के मालिक थे। लेकिन बड़े उद्योगों के पूंजीवादी विस्तार ने उन्हें अपनी इस फैक्ट्री को बंद करने पर मजबूर कर दिया। नतीजतन, आइंस्टाइन परिवार को काम की तलाश में शहर-दर-शहर भटकना पड़ा। इन घटनाओं का आइंस्टाइन के मन पर

गहरा असर पड़ा। यहां तक कि सत्रह साल की उम्र तक आते-आते अपने देश जर्मनी के प्रति उनकी घृणा इतनी प्रबल हो चुकी थी कि आगे की पढ़ाई के लिए उन्होंने स्विट्ज़रलैंड जैसे तटस्थ देश जाने का फैसला किया। यहां आइंस्टाइन की शिक्षा ज़्यूरिख के एक संभ्रांत स्कूल में हुई। ऐसे स्कूल में उन जैसे साधारण परिवार के लड़के द्वारा तकनीकी शिक्षा प्राप्त करना वास्तव में एक बड़ी बात थी। विडम्बना यह थी कि ऐसे स्कूल उसी पूंजीवादी व्यवस्था के परिणाम थे, जिसने उनके परिवार को आर्थिक कष्ट झेलने पर मजबूर किया।

जैसा कि सब जानते हैं, आइंस्टाइन के केरियर की शुरुआत किसी विज्ञान अकादमी में न होकर, पेटेंट कार्यालय के एक क्लर्क की हैसियत से हुई। यहीं रहकर उन्होंने वह काम किया, जिसने आगे चलकर उन्हें विश्वव्यापी प्रसिद्धि और नोबेल पुरस्कार दिलवाया। इससे भी ज़्यादा महत्वपूर्ण बात यह कि आइंस्टाइन का यह काम भौतिकी में उस समय के प्रचलित विचारों से एकदम अलग था। हालांकि इस काम की गहराई को समझाने के लिए भौतिकी और उसके ऐतिहासिक विकास की समझ आवश्यक है। फिर भी हम आइंस्टाइन के भौतिकी के प्रति योगदान के मूलभूत सिद्धांतों को समझने की कोशिश करेंगे।

रचनात्मक व आधारभूत सिद्धांत

मूलतः आइंस्टाइन ने दो प्रकार के सिद्धांतों के अंतर को निरूपित किया। ज़्यादातर सिद्धांत पहले तरह के होते हैं, जिन्हें उन्होंने रचनात्मक सिद्धांतों की संज्ञा दी। ऐसे सिद्धांत आज अपचयवादी कहलाएंगे क्योंकि ये वृहत्ताकार एवं जटिल घटनाओं की व्याख्या, उनके सूक्ष्म अवयवों के व्यवहार पर आधारित, अपेक्षाकृत सरल तर्कों के द्वारा करते हैं। ये अवयव अधिकतर परिकाल्पनिक होते हैं। दूसरी प्रकार के सिद्धांतों को उन्होंने आधार-भूत सिद्धांतों के नाम से पुकारा। इस तरह के सिद्धांतों का आधार परि-काल्पनिक अवयव न होकर, घटनाओं के वे सामान्य गुणधर्म होते हैं जो अनुभव-जन्य एवं प्रायोगिक अवलोकन के योग्य होते हैं। स्वयं आइंस्टाइन ने दोनों तरह के सिद्धांतों का विकास किया।

रचनात्मक सिद्धांत का एक उदाहरण गैसों की कायनेटिक थ्योरी है। इस थ्योरी में किसी गैस के गुणधर्म, जैसे कि उसके ताप एवं दाब, उसके परिकाल्पनिक अवयव यानी अणुओं की अभिक्रिया एवं चाल पर निर्भर करते हैं। इस संदर्भ में आइंस्टाइन ने अपने आप से एक बिल्कुल सीधा एवं सरल प्रश्न किया। प्रश्न था, "कोई यह कैसे सिद्ध कर सकता है या नकार सकता है कि अणु वास्तविक पदार्थ

होते हैं? और अगर वे वास्तविक होते हैं तब क्या उनके आकार को नापा जा सकता है या फिर उनकी गिनती की जा सकती है?" इन सवालों के उत्तर पाने के लिए उन्होंने ब्राउनियन गति को अपना केंद्र बिंदु बनाया। ब्राउनियन गति किसी घोल में मिले पदार्थ के छोटे-छोटे टुकड़ों की गति को कहते हैं, और इसे सूक्ष्मदर्शी के द्वारा देखा जा सकता है। आइंस्टाइन ने प्रयोगों के द्वारा दिखाया कि ऐसा द्रव के अणुओं की द्रुत गति के कारण होता है। इस अत्यंत तेज़ गति के कारण द्रवाणु घोल में मिले पदार्थ के कणों से बार-बार टकराते हैं। ऐसा प्रति सेंकड लगभग 10^{20} बार होता है, और चूंकि अणुओं का घूमना हर संभावित दिशा में होता है, कुल मिलाकर उनकी गति संयोगिक बन जाती है। दरअसल अणुओं की इसी गति को व्यवहारिक स्तर पर हम ऊष्मा के रूप में महसूस करते हैं। कोई वस्तु उतनी ही गर्म होगी जितनी उसके अणुओं की गति होगी। गति ज़्यादा

क्या अणु वास्तविक पदार्थ होते हैं? क्या उनके आकार को नापा जा सकता है या उनकी गिनती की जा सकती है? इन सवालों के उत्तर पाने के लिए आइंस्टाइन ने किसी द्रव के अणुओं की संख्या नापने के कई तरीके इजाद किए। इससे अणुओं का भौतिक अस्तित्व साबित हो सका।

तो गर्मी भी ज़्यादा, गति कम तो गर्मी भी कम। इसके अलावा आइंस्टाइन ने किसी द्रव के अणुओं की संख्या नापने के कई ऐसे स्वतंत्र तरीके भी विकसित किए जिनका निष्कर्ष हमेशा एक ही रहा। इस तरह उन्होंने अणुओं की भौतिक सत्यता को बिना किसी शक-ओ-शुबा प्रमाणित किया।

प्रकाश क्वांटम परिकल्पना

भौतिकशास्त्र में यह उनका पहला कार्य था। और यही आगे चलकर क्वांटम थ्योरी के प्रति उनके उस योगदान का आधार बना, जिसे उन्होंने अपना सर्वाधिक क्रांतिकारी काम माना। इसमें उन्होंने इस विचार का सूत्रपात किया कि प्रकाश वास्तव में ऊर्जा के छोटे-छोटे बंडलों से मिलकर बना होता है। इन बंडलों को फोटॉन कहा जाता है। उनकी यह परिकल्पना 'प्रकाश क्वांटम परिकल्पना' के नाम से जानी जाती है, और इसी पर उन्हें नोबेल पुरस्कार दिया गया। इस परिकल्पना की परिणिति 'फोटो इलेक्ट्रिक इफेक्ट' में हुई जो कि प्रायोगिक कसौटी पर एकदम खरा उतरा। एक साधारण फोटो इलेक्ट्रिक सेल की कार्य पद्धति इसी सिद्धांत पर आधारित है।

यहां पर यह बतलाना ज़रूरी हो जाता है कि उन दिनों इस सिद्धांत को कितना अटपटा माना गया। इसके पहले लगभग दो सौ सालों से यह धारणा चली आ रही थी कि प्रकाश एक तरंग के रूप में बहता है। देखा जाए तो एक तरंग के चलने में और एक कण के चलने में बहुत अंतर होता है। लेकिन 'प्रकाश क्वांटम परिकल्पना' मूलतः यही कहती है कि कभी-कभी प्रकाश भी एक कण की भांति व्यवहार कर सकता है। ऐसे में, वो भी अपनी ऊर्जा दूसरे कणों जैसे इलेक्ट्रॉन इत्यादि को ठीक इस तरह प्रदान कर सकता है जैसे वह स्वयं भी कण हो। और यही बात तो उस वक्त 'फोटो इलेक्ट्रिक सेल' में होती है, जब सेल पर डाला गया प्रकाश इलेक्ट्रॉन को अपनी ऊर्जा देकर उन्हें बाहर निकालता है। प्रयोग द्वारा इन छोड़े गए इलेक्ट्रॉन की ऊर्जा को, डाले गए प्रकाश की तीव्रता से स्वतंत्र पाया गया। इसका मतलब यह हुआ कि ऊर्जा का यह स्थानांतरण एक सतत् प्रक्रिया न होकर, टुकड़ों-टुकड़ों में होता है। ऐसा होना असंभव होता, अगर प्रकाश एक लहर की तरह चलता।

निश्चयवाद का अंत

क्वांटम थ्योरी में हम ऐसी स्थिति का भी सामना करते हैं, जब इलेक्ट्रॉन जैसा एक बुनियादी कण भी तरंग की तरह व्यवहार करने लगता है। यानी कि हम निरपेक्ष रूप से कभी भी यह नहीं मान सकते कि अमुक चीज़ तरंग है या कण। क्वांटम थ्योरी के इस

मूलभूत सिद्धांत ने उस समय के मान्य निश्चयवाद को काफी गहरी चोट पहुंचाई। आइंस्टाइन और भी आगे गए जब उन्होंने पाया कि क्वांटम स्तर पर कारणता का निर्बाध अस्तित्व भी खतरे में पड़ जाता है, अर्थात किसी प्रक्रिया का ठीक-ठीक परिणाम क्या होगा, यह भी हम निश्चित तौर पर नहीं कह सकते। बतला सकते हैं तो सिर्फ उस परिणाम के होने की संभावना। निश्चितता का स्थान संभावना ने हथिया लिया। और यहीं से निश्चयवाद के अंत की शुरुआत हुई। हालांकि आइंस्टाइन स्वयं भी इस तथ्य को पचा न सके कि क्वांटम स्तर पर किसी परिणाम के होने या न होने की हम सिर्फ संभावना ही जतला सकते हैं। तभी तो उन्होंने अपने ये प्रसिद्ध शब्द कहे, "....ईश्वर जुआ नहीं खेलता ...।" मन ही मन वे मानते रहे कि किसी गहन स्तर पर प्रकृति अवश्य ही निश्चयवादी है। अर्थात किसी भी चीज़ के होने का कोई कारण अवश्य होगा। हां, हमारा तात्कालिक ज्ञान अवश्य ही इतना सीमित हो सकता है कि हम वह कारण न जान पाएं। और यह बहस तब से अब तक जारी है!

इसके अलावा आइंस्टाइन ने दो मूलभूत सिद्धांतों का प्रतिपादन भी किया, जिन्हें सापेक्षता के विशिष्ट एवं सामान्य सिद्धांत कहा जाता है।

सापेक्षता का विशिष्ट सिद्धांत

सापेक्षता की स्पेशल थ्योरी का आधार दो सिद्धांत हैं। पहला सिद्धांत यह है कि इस संसार को देखने का कोई भौतिक तरीका निरपेक्ष नहीं, पूर्ण नहीं। भौतिक स्तर पर हर चीज़, हर मापदंड, हर अवलोकन सापेक्ष है; उसका कोई-न-कोई संदर्भ है। दूसरा सिद्धांत यह है कि प्रकाश का वेग भौतिक स्तर पर सबसे अधिक है, प्रकाश से ज़्यादा तेज़ कोई भी भौतिक वस्तु इस दुनिया में नहीं है। आइए इन साधारण से सिद्धांतों को और अच्छी तरह से समझें।

पहले सिद्धांत के अनुसार सारी निरंतर गतियां सापेक्ष हैं। इसका क्या मतलब? ट्रेन में सफर करते वक्त हम कहते हैं कि ट्रेन चल रही है। इसके मायने क्या? असल में ट्रेन का यह चलना उस ज़मीन के संदर्भ में है जिसे हम चलती ट्रेन से देखने पर स्थिर पाते हैं। तो क्या ज़मीन वाकई में रुकी हुई है? हम जानते हैं कि ऐसा नहीं है, पृथ्वी तो लगातार घूम रही है। आइए अब उस ऑब्ज़र्वर के हिसाब से देखें जो अंतरिक्ष से पृथ्वी का अवलोकन कर रहा है। हमारी पृथ्वी तो उसे घूमती नज़र आएगी, पर अगर ट्रेन की गति, उस ट्रेन और पृथ्वी की गतियों के अंतर के ठीक बराबर हुई, तो उसे ट्रेन चलती के बजाए रुकी हुई

नज़र आएगी। लेकिन, क्या हम कह सकते हैं कि उस प्रेक्षक का देखना एकदम सही है, निरपेक्ष है? देखा जाए तो ऐसा प्रेक्षक स्वयं भी, किसी अन्य प्रेक्षक – जो हमारे सौरमंडल के भी बाहर से देख रहा हो – के मुकाबले चल रहा है। तो फिर निरपेक्ष किसे मानें हम? सभी कुछ तो सापेक्ष है। युगों से मानव भगवान की अवधारणा में विश्वास करता चला आ रहा है। जब भी उसे किसी बात के, प्रश्न के, निरपेक्ष उत्तर की आवश्यकता पड़ी उसने इस भगवान रूपी कॉन्सेप्ट का सहारा लिया। लेकिन जब उसका यही आश्रयदाता कॉन्सेप्ट उभरते हुए यंत्रवादी दृष्टिकोण से छिन्न-भिन्न होने लगा, तब वैज्ञानिकों ने एक नए सहारे की खोज की – अंतरिक्ष में हर तरफ फैले स्थिर ईथर की अवधारणा की। लेकिन आइंस्टाइन की परिकल्पना कहती है कि ऐसे किसी पूर्ण रूप से निरपेक्ष तत्व ईथर की ज़रूरत ही नहीं क्योंकि इस परिकल्पना के अनुसार ऐसा कुछ भी नहीं हो सकता जिसे हम सही, पूर्ण या निरपेक्ष दृष्टिकोण कह सकें।

सापेक्षता की स्पेशल थ्योरी का दूसरा सिद्धांत कहता है कि प्रकाश का वेग सर्वाधिक वेग है। इस सिद्धांत का आधार यह परिकल्पना है कि प्रकृति में कोई भी अभिक्रिया तात्कालिक नहीं है। यानी किसी भी क्रिया के होने और उसके परिणाम मिलने में कुछ न कुछ समय ज़रूर लगता है, चाहे वह समय कितना ही छोटा क्यों न हो। यह सब एकदम नहीं होता, उसी क्षण नहीं होता। आइए, इस परिकल्पना को प्रकाश के वेग के संदर्भ में देखें। जैसा कि हम जानते हैं, किसी बल का यह स्थानांतरण (ट्रांसफर) फोटॉन के ज़रिए होता है। प्रकाश ही नहीं बल्कि सारी विद्युत चुंबकीय तरंगें फोटॉन से मिलकर बनी होती हैं। इसलिए प्रकाश में भी विद्युत चुंबकीय बलों का स्थानांतरण फोटॉन के ज़रिए होता है। अब ये बल आकर्षण के भी हो सकते हैं, विकर्षण के भी। यह सब उन कणों की प्रकृति पर निर्भर करता है जिनके बीच इन बलों का स्थानांतरण हुआ है। एक इलेक्ट्रॉन जब दूसरे इलेक्ट्रॉन को दूर फेंकता है तो ऐसा वह उसे फोटॉन देकर करता है। यह प्रक्रिया तात्कालिक नहीं होती, क्योंकि फोटॉन को पहले इलेक्ट्रॉन से दूसरे इलेक्ट्रॉन तक पहुंचने में कुछ समय तो लगता ही है। फोटॉन प्रकाश की गति से चलता है। स्पेशल थ्योरी के मुताबिक इस प्रक्रिया से तेज़ प्रक्रिया इस दुनिया में कोई भी नहीं। यानी कि प्रकाश से तेज़ कोई वस्तु है ही नहीं।

उपरोक्त दोनों सिद्धांतों से हम कुछ चौंकाने वाले निष्कर्षों पर पहुंचते हैं। मान लीजिए कि आप प्रकाश की एक किरण के साथ-साथ चल रहे हैं। स्वाभाविक ही आपको अपने संदर्भ में

प्रकाश ठहरा हुआ-सा लगेगा, क्योंकि आपकी गति और प्रकाश की गति समान है। ऐसे में अगर आप अपना चेहरा आइने में देखें तो आपको कुछ भी नज़र नहीं आएगा। और आपका दृष्टिकोण सामान्य न रहकर विशिष्ट बन चुका होगा, क्योंकि आप की गति अब निरपेक्ष हो गई है। लेकिन निरपेक्ष किस हिसाब से, किस दृष्टिकोण से! प्रथम सिद्धांत के अनुसार ऐसा कोई भी दृष्टिकोण नहीं जो निरपेक्ष गति को सुनिश्चित कर सके। इसलिए इस सिद्धांत के अनुसार आपका प्रतिबिंब गायब नहीं हो सकता। होगा यह कि, किसी दूसरे ऑब्ज़र्वर को प्रकाश आप से उतनी ही तेज़ गति से दूर जाता दिखेगा जिस गति से वह आपकी ओर आ रहा होगा।

इन सिद्धांतों से आइंस्टाइन इस नतीजे पर पहुंचे कि समय और दूरी के माप (जो किसी भी गति को मापने के लिए ज़रूरी हैं) स्वयं मापने वाले की गति पर निर्भर करेंगे। दैनिक जीवन में हमारा पाला जिन गतियों से पड़ता है वे प्रकाश की गति (3,00,000 किमी प्रति सेंकड) के मुकाबले काफी कम होती हैं और हम इस बात को महसूस ही नहीं करते कि दूरी और समय के माप भी बदल सकते हैं। हम समझते हैं कि वे हमेशा एक स्थिर संख्या में होते हैं। लेकिन किसी भी ऐसे प्रेक्षक को, जिसका वेग प्रकाश के वेग की ओर बढ़ रहा है, किसी स्थिर प्रेक्षक के मुकाबले समय और दूरियां कम होती प्रतीत होंगी। नतीजतन, स्थिर प्रेक्षक को जो दो घटनाएं एक ही समय में घटित होती प्रतीत होती हैं, वे उस गतिमान प्रेक्षक को अलग-अलग समय में घटती हुई लगेंगी। अर्थात् समय के सूक्ष्मतम अंतरालों को हम तभी महसूस कर सकते हैं जब हमारी स्वयं की गति प्रकाश की गति को लक्ष्य मानकर उसकी ओर बढ़े। वरना आम भौतिक स्तर पर घटने वाली कई घटनाओं के बीच बसे सूक्ष्म अंतराल को महसूस ही नहीं कर पाएंगे, जैसा कि अक्सर होता ही है। कितनी गहरी है यह परिकल्पना! और इसी परिकल्पना ने उस समय में प्रचलित न्यूटन के इस विचार को धक्का पहुंचाया, कि समय एवं अंतरिक्ष निरपेक्ष होते हैं, कि वे कभी नहीं बदलते हैं।

उपरोक्त निष्कर्षों ने हमें यह भी बताया है कि किसी भी पदार्थ का द्रव्यमान निरपेक्ष नहीं होता; बल्कि उस पदार्थ में समाहित ऊर्जा की मात्रा पर निर्भर करता है। और इस ऊर्जा-मात्रा के बढ़ने के साथ-साथ उसका द्रव्यमान भी बढ़ेगा। किसी पदार्थ की ऊर्जा-मात्रा उस पदार्थ की गति के साथ बढ़ती है। अर्थात् अगर किसी पदार्थ की गति बढ़ाई जाए तो उसकी ऊर्जा-मात्रा भी बढ़ेगी और फलस्वरूप

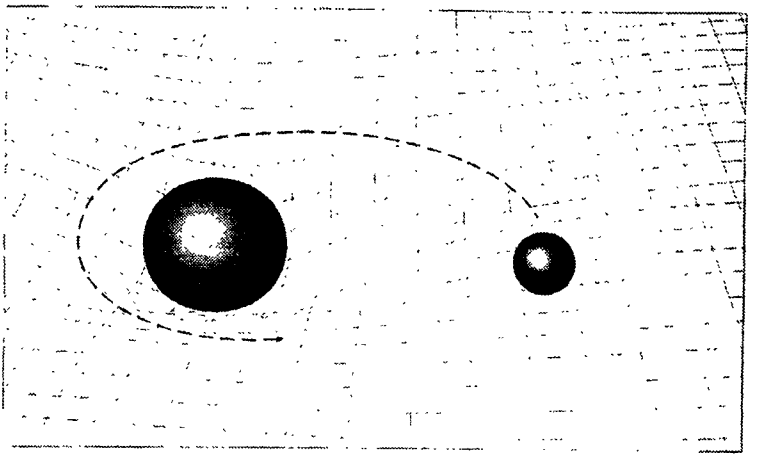

पूर्व की मान्यताओं के विपरीत आइंस्टीन का मानना था कि स्पेस और समय दोनों मुड़ सकते हैं। इस नई अवधारणा के मुताबिक विशाल-भारी पिंड अपने गुरुत्वबल से अपने आसपास की स्पेस में विकृति (Distortion) लाते हैं। इस बात को समझने के लिए एक रबर की शीट की कल्पना करें जिस पर एक भारी गेंद रखी हुई है। थोड़ी दूरी पर एक हल्की गेंद रखी है। भारी पिंड की वजह से रबर शीट रूपी स्पेस में जो विकृति आती है उसके कारण दूसरी गेंद उसकी ओर गिरने की कोशिश कर रही है। ब्रह्मांड में पिंडों के एक-दूसरे के इर्दगिर्द घूमने की यह एक वैकल्पिक व्याख्या है।

उसका द्रव्यमान भी बढ़ेगा। यह तथ्य आइंस्टाइन के इस विश्वप्रसिद्ध समीकरण में निहित है:

$$E = mc^2$$

और यह समीकरण शायद इस शताब्दी का सबसे प्रसिद्ध समीकरण है। इसी समीकरण ने पदार्थ के द्रव्य की ऊर्जा के उपयोग की संभावनाओं को आकार दिया। इसके पहले तक हम सिर्फ पदार्थ की रासायनिक एवं गतिज (कायनेटिक) ऊर्जा के बारे में जानते थे। हालांकि आइंस्टाइन ने इस ऊर्जा को प्राप्त करने के तरीकों के बारे में कुछ भी नहीं कहा, फिर भी उनके इस कार्य ने एटम बम के विकास की नींव डाली।

सापेक्षता का सामान्य सिद्धांत

आइंस्टाइन की सापेक्षता की जनरल थ्योरी न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के नियम का विस्तार है। इस थ्योरी ने गुरुत्वाकर्षण के नियम में कुछ मूलभूत सुधार भी किए। आगे चलकर यह थ्योरी ब्रह्मांड विज्ञान के विकास का आधार बनी। ब्रह्मांड विज्ञान में हम

ब्रह्मांड की उत्पत्ति और उसके विकास के बारे में पढ़ते हैं। जानते हैं जनरल थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी का आधार क्या है? बड़ा ही सीधा-सा एक प्रश्न, जो उन्होंने पेटेंट ऑफिस में अपने कार्यकाल के दौरान अपने-आप से किया। दरअसल आइंस्टाइन की कई चरित्रगत विशेषताओं में एक विशेषता यह भी थी कि ऐसे प्रश्नों से रूबरू होना, जो ऊपर से दिखते तो सीधे हैं लेकिन होते हैं बड़े गहरे। साथ ही उनमें एक और खूबी थी, वह यह कि ऐसे गूढ़ प्रश्नों के उत्तर खोजने की लगन और उन्हें समझने की अंतर्दृष्टि। यही खूबियां उनके कार्यों का, विचारों का, एक अभिन्न अंग बनी। तर्क में उनका विश्वास इतना गहरा था कि इससे उपजने वाले उत्तरों को स्वीकारने के अलावा उनके पास और कोई रास्ता भी नहीं होता था। चाहे ये उत्तर परोक्षतः कितने ही बेतुके क्यों न लगते हों। हां, तो हम उस प्रश्न की बात कर रहे थे, जो उन्होंने पेटेंट ऑफिस में रहते अपने आप से किया था। प्रश्न था, "अगर कोई व्यक्ति बिना किसी बाधा के स्वतंत्र रूप से गिरे तो उसे अपना भार महसूस ही नहीं होना चाहिए।" है न कितना सीधा-सा प्रश्न? लेकिन ज़रा ध्यान दें, तो टेढ़ा लगेगा।

ऐसा अक्सर कहा जाता है कि उन्होंने अकेले ही इस शताब्दी में भौतिकी के क्षेत्र में क्रांति ला दी। लेकिन हर नम्र और महान व्यक्ति की तरह आइंस्टाइन इस बात से इंकार करते रहे। और बराबर अपने पूर्ववर्ती, जैसे फैराडे, मेक्सवेल, लॉरेन्ज़ और पोंइकेर के योगदान को भी उचित सम्मान देते रहे। उन्होंने इस बात से भी इंकार किया कि उनके काम का कोई दार्शनिक आधार है। वे सदा यह मानते रहे कि उनके काम का आधार है भौतिक संसार की सटीक और तर्कसंगत व्याख्या। इसके अलावा कुछ भी नहीं। लेकिन फिर भी इस सत्य को नकारा नहीं जा सकता कि उनके विचारों ने न सिर्फ भौतिक-शास्त्रियों बल्कि आम लोगों को भी प्रभावित किया। उनके कार्य का प्रभाव इतना व्यापक हुआ कि उसे किसी एक क्षेत्र से बांधना असंभव है। उनके विचारों ने विश्व की इस निश्चयवादी व्याख्या की जड़ें हिला दीं कि हर चीज़ की जगह सुनिश्चित व स्वयंभू नियमों के द्वारा ही तय हो सकती है। निश्चयवाद हमारे तटस्थ अवलोकन पर निर्भर था। यानी कि हमारा किसी वस्तु के प्रति अवलोकन तटस्थ हो सकता है। जबकि क्वांटम थ्योरी के अनुसार हमारा देखना भर ही किसी घटना को, उसके परिणाम को बदल देता है। हमारा देखना कभी भी तटस्थ या निरपेक्ष नहीं हो सकता। इस एक विचार ने तहलका मचा दिया। इसने दार्शनिकों को ही नहीं, बल्कि हर उस व्यक्ति को

सोचने के लिए प्रेरित किया जो ब्रह्मांड और ब्रह्मांड में अपने स्थान को लेकर आश्चर्यचकित है। इसलिए हम पाते हैं कि आइंस्टाइन के विचारों को केवल भौतिक-शास्त्र तक ही सीमित रखना उनकी गहनता को, गूढ़ता को नकारना है।

व्यक्तित्व के सामाजिक पहलू

अब तक तो हमने आइंस्टाइन के केवल वैज्ञानिक पहलू को ही देखा। उनके वैज्ञानिक कार्यों के व्यापक एवं गहरे प्रभाव को देखते हुए क्या यह ज़रूरी नहीं हो जाता कि हम उनको एक व्यक्ति के स्तर पर भी जानें। क्या हम विज्ञान को और उसकी खोजों को एकदम अवैयक्तिक और वस्तुनिष्ठ करार दे सकते हैं? वैज्ञानिक इतिहास तो हमें ऐसा करने से रोकता है। देखा जाए तो विज्ञान कभी भी समाज से कट नहीं सकता, अलग नहीं हो सकता। उसके परिणामों का तो समाज पर प्रभाव पड़ना ही है; चाहे उसके काम अपने आप में कितने ही व्यक्ति-स्वतंत्र और वस्तुनिष्ठ क्यों न हों। अंततः यह सब होता भी तो मनुष्य के लिए ही है। और मनुष्य यानी समाज की इकाई। तो फिर हम मनुष्य और समाज को यूं जुदा-जुदा क्यों करें? और ऐसा कर भी सकते हैं क्या, अगर चाहें भी तो?

कुछ विचार समाजवाद पर

आइंस्टाइन की वैज्ञानिक समझ, उनका राजनैतिक दृष्टिकोण और सबसे बढ़कर उनका प्रबल मानवतावाद इस एक कथन से स्पष्ट होता है जो उन्होंने अपनी मृत्यु से कुछ ही वर्ष पूर्व सत्तर साल की उम्र में दिया, "....किसी भी ऐसी अर्थव्यवस्था, जो पूंजी के निजी स्वामित्व पर आधारित है, के दो मुख्य सिद्धांत होते हैं। पहला यह कि उत्पादन के साधन निजी संपत्ति होते हैं और उनके मालिक जैसा भी उचित समझें वैसा उनका उपयोग कर सकते हैं। दूसरा सिद्धांत यह कि श्रम अनुबंध मुफ्त में उपलब्ध होता है। हालांकि वास्तव में ऐसी कोई भी व्यवस्था नहीं होती जिसे हम इस हिसाब से शुद्ध पूंजीवादी समाज कह सकें। विशेषकर श्रमिक वर्ग ने लंबे राजनैतिक संघर्षों के ज़रिए कुछ प्रकार के कार्यों के लिए तो कम-से-कम इस मुफ्त श्रम अनुबंध का संशोधित एवं लाभकारी आकार पाने में सफलता पाई है। लेकिन फिर भी हम कह सकते हैं कि वर्तमान अर्थव्यवस्था शुद्ध पूंजीवादी व्यवस्था से कहीं बहुत ज़्यादा अलग नहीं है।

उत्पादन इसलिए नहीं किया जाता कि उसका कुछ उपयोग हो, बल्कि वह मूलतः फायदे के लिए ही किया जाता है। ऐसी व्यवस्था में इस बात का कहीं भी कोई प्रावधान नहीं होता कि हर इच्छुक और योग्य व्यक्ति काम पा सके, बेरोज़गारों की सेना हमेशा ऐसी व्यवस्था में बरकरार रहेगी। इसके अलावा एक मज़दूर हमेशा काम से निकाले जाने का डर पाले रहता है। तकनीकी विकास लोगों पर काम के बोझ को कम करने की बजाए बेरोज़गारों की इस सेना को बढ़ाने में ही मदद करता है। मुनाफा कमाने का उद्देश्य और पूंजीपतियों के बीच बढ़ती प्रतिद्वंदिता दोनों मिलकर पूंजी के संचय और उसके उपयोग में ऐसी अस्थिरता पैदा करते हैं जो मज़दूरों की आर्थिक निराशा को बढ़ाने में कोई कसर नहीं छोड़ती। निर्बाध प्रतिद्वंदिता श्रम के विशाल दुरुपयोग को जन्म देती है, और लोगों की सामाजिक चेतना को पंगु बनाती है। मैं इस पंगुता को पूंजीवाद की सबसे बड़ी बुराई मानता हूं। हमारी संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था इस बीमारी की शिकार है। ऐसी शिक्षा व्यवस्था एक विद्यार्थी के मन में एक अतिरंजित प्रतिद्वंदी मानसिकता को जन्म देती है। इसी मानसिकता के कारण वह अपने उज्जवल भविष्य के लिए अर्जनशील सफलता को आवश्यक गुण समझने लगता है और मन-ही-मन उसकी पूजा करता है।

इन बुराइयों से निपटने के लिए हमारे पास एक ही उपाय है और वह है कि समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना। ऐसी व्यवस्था की सहयोगी होगी वह शिक्षा व्यवस्था जो सामाजिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के अनुकूल होगी।"

यह सब जानते हैं कि आइंस्टाइन यहूदियों और उनके देश इज़राइल के अस्तित्व के प्रबल समर्थक थे। हालांकि वे रूढ़िगत हिसाब से बिल्कुल भी धार्मिक नहीं थे। उन्हीं के शब्दों में, बारह साल की उम्र में, "उस समय की लोकप्रिय वैज्ञानिक किताबें पढ़कर मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि बाइबल में छपी ज़्यादातर कहानियां कभी सच हो ही नहीं सकतीं।" यहूदियों के प्रति उनकी सहानुभूति का आधार भी धार्मिक नहीं था, और यह सहानुभूति इसलिए भी नहीं थी कि वे स्वयं एक यहूदी थे। बल्कि यह सहानुभूति, नाज़ियों द्वारा यहूदियों पर किए गए अत्याचारों का परिणाम थी। नाज़ियों से उन्हें सख्त घृणा थी। उनके खुद के रिश्तेदार और मित्र इन अत्याचारों के शिकार हुए। यही नहीं, वे स्वयं भी नाज़ियों की निंदा के शिकार हुए जब नाज़ियों ने उनके सापेक्षतावाद को यहूदी विज्ञान की संज्ञा दी। यह बात भी सर्वविदित है कि इज़राइल के प्रथम राष्ट्रपति चेम वाईज़मे के निधन के बाद उन्हें इस पद के लिए आमंत्रित किया गया था। लेकिन आइंस्टाइन ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया क्योंकि यहूदियों और इज़राइल के प्रबल समर्थक होने के बावजूद वे वहां की सरकार के कट्टर आलोचक थे।

आइंस्टाइन एक प्रबल शांतिवादी भी थे, और ताउम्र सैन्यवाद के कट्टर विरोधी बने रहे। फिर भी कई लोग उनके इस विरोधाभास को आसानी से पचा नहीं पाते कि वे उन लोगों में शरीक थे जिन्होंने सबसे पहले अमरीकी सरकार को एटम बम बनाने के लिए उकसाया। हालांकि उनके निकटतम सूत्रों के अनुसार उन्होंने ऐसा इसलिए किया था कि नाज़ी खुद एटम बम बनाने में लगे थे, और आइंस्टाइन हर हालत में इसे रोकना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने अमेरिकी सरकार को बम बनाने के लिए प्रेरित किया। यद्यपि यह सही है कि इसके बाद जो कुछ भी हुआ वह ठीक इसके विपरीत था। बम बनने के पहले ही युद्ध समाप्त हो चुका था, और जब बम बना भी तो उसका पहला प्रयोग जापान पर किया गया। यह बात भी अब स्पष्ट हो चली है कि इस बम को गिराने के पीछे अमेरिका का विश्व की अग्रणी शक्ति बनने का निहित स्वार्थ था। युद्ध बंद करवाना तो इसका एक बहाना बना। दिनों-दिन फैलते हुए कम्यूनिज़्म को देखते हुए अमेरिकी सरकार के लिए ऐसा करना ज़रूरी हो गया था। लेकिन इस घटना ने आइंस्टाइन को काफी दुख पहुंचाया। उन्होंने कहा भी, "इस पहले एटम बम ने न सिर्फ हिरोशिमा को ध्वस्त किया है, बल्कि इसने हमारी अब तक की उस राजनैतिक सोच के परखचे भी उड़ाए हैं, जो अब गल चुकी है।" उन्होंने अपनी चिरपरिचित

विशिष्ट शैली में, ऐसी विश्व सरकार की स्थापना की पुरजोर वकालत की जो समाजवादी विचारधारा पर आधारित हो। वरना, उन्होंने कहा कि "वह दिन दूर नहीं जब शीत युद्ध सारी मानवता का भविष्य दांव पर लगा देगा।" वर्तमान परिस्थितियों में हम उनके इस पूर्वाभास की प्रामाणिकता को नकार नहीं सकते।

युद्ध खत्म होने के बाद आइंस्टाइन धीरे-धीरे राजनैतिक मामलों में और भी मुखर होते गए। युद्ध विरोधी घोषणा पत्रों और विश्वव्यापी निरस्त्रीकरण के वे प्रबल समर्थक बने। यहां तक कि उन लोगों को – जो ऐसे युद्ध लड़ने के बजाए, जिनमें उनका विश्वास न हो, जेल जाना पसंद करते – नोबेल पुरस्कार देने की सिफारिश भी की। फिर भी उनके इन विचारों का गहरा व व्यापक प्रभाव पड़ा, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता। क्योंकि उनकी निगाह में एक राजनैतिक समस्या का समाधान कभी भी संपूर्ण नहीं हो सकता। इसका जो भी समाधान होगा वह एक समझौता भर ही होगा। और आप तो जानते ही हैं कि आइंस्टाइन और समझौता ये दो अलग-अलग छोर थे। उनका परस्पर मिलन कभी हो ही नहीं सकता था चाहे वह काम में हो या विचार में।

वे एक पारंपरिक क्रांतिकारी नहीं थे, क्योंकि उनका प्राथमिक उद्देश्य कभी भी भौतिक या राजनैतिक सत्ता को अपदस्थ करना नहीं रहा। दरअसल, भौतिक सत्ता उनकी नज़र में इतनी महत्वपूर्ण नहीं थी कि उसे पलटने में अपना समय और ऊर्जा बरबाद करें। वे क्रांतिकारी ज़रूर थे लेकिन इस हिसाब से कि उनकी निगाह में सर्वोपरि सत्ता विवेक था, तर्क था, बुद्धि थी। और इसी सत्ता के द्वारा उनके विचारों और कार्यों का संचालन होता रहा।

सुबीर सरकार: पेशे से अंतरिक्ष -भौतिकशास्त्री। हाल में केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में शोध कर रहे हैं। स्रोत फीचर सेवा के शुरुआती दौर में एकलव्य के साथ जुड़े रहे।
अनुवाद: मनोहर नोतानी: अनुवाद कार्य में रुचि, भोपाल में रहते हैं।
यह लेख स्रोत फीचर के मार्च 1989 अंक से लिया गया है।